International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232, Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 3; Issue 2; March 2017; Page No. 90-92

प्रेमचन्द के कहानियों में दलित विमर्श

सुमन
शोधार्थी मोनाड विश्वविद्यालय हापुड़, उत्तर प्रदेश, भारत

प्रस्तावना

साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है। स्वाभाविक रूप से इसका आशय यह है कि जिस प्रकार दर्पण किसी व्यक्ति या वस्तु की छवि को यथावत प्रदर्षित करता है समाज के संदर्भ में साहित्य और समाज अन्योन्याश्रित भूमिका निभाते हैं। साहित्य में समाज के सदस्यों के हर्ष, विशाद, अच्छाई, बुराई, शक्ति और कमजोरी उनकी विभिन्न मनोवृतियों, प्रवृतियों का वर्णन होता है साथ ही वह समाज के विभिन्न समूहों के हित उनके आपसी अन्तर्विरोध, उसकी अच्छी प्रथाओं और कुरीतियों के वर्णन के साथ ही बुरी प्रवृतियों के विरुद्ध संघर्श की चेतना का निर्माण भी करता है। साहित्य की महत्ता को लेकर अलग–अलग दावे प्रस्तुत किए जाते रहे हैं, लेकिन ''साहित्य उसी रचना को कहेंगे जिसमें कोई सच्चाई प्रकट की गई हो।'' इतिहासकार की सफलता इस बात में है कि वह साहित्य से सच्चाई को अलग करके उसका उपयोग इतिहास–लेखन में करे। हिन्दी साहित्य में प्रेमचन्द एक कालजयी साहित्यकार हैं और उनका लेखन काल विशेष की सच्चाई को प्रकट करने वाला है।

मुंशी प्रेमचन्द जैसा भारतीय जनता का इतना बड़ा हितैशी कलाकार हिन्दी साहित्य में अभी तक दूसरा नहीं। वह हमारी सामाजिक एवं राष्ट्रीय जाग्रति का अग्रदूत है। राजनीति के क्षेत्र में जो कार्य करके गांधी जी ने अमरता प्राप्त की है, कथा साहित्य के क्षेत्र में वही कार्य करके प्रेमचन्द ने वही महत्व प्राप्त किया है। वे हिन्दी के सर्वप्रथम सच्चे प्रगतिशील, युगप्रवर्तक कलाकार कहे जा सकते हैं। जिस समय हमारी कविता छायावाद के काल्पनिक लोक में विचरण कर रही थी, नाटक साहित्य प्रसाद की आदर्शवादी कला से रंजित था, उपन्यास अपने बाल्यकाल में तिलस्मी और जासूसी के कौतूहल में मग्न था, उस समय प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों और उपन्यासों में यथार्थ जीवन की सच्ची अभिव्यक्ति करके हिन्दी साहित्य को एक नई दिशा प्रदान की।

प्रेमचन्द दलित जीवन को हिन्दी साहित्य के केंद्र में लाने वाले पहले लेखक थे। उनका कथा और विचार साहित्य हिन्दी क्षेत्र के दलित जीवन की त्रासदी का प्रामाणिक आकलन है। छूत–अछूत और दलित समस्या पर जिस गहरी संवेदना से प्रेमचन्द ने लिखा है, किसी और ने नहीं। प्रेमचन्द के सामने यह बात बिल्कुल साफ थी कि यह समस्या मूलतः हिन्दू समाज की समस्या है। प्रेमचन्द हिन्दू समाज की इस विडम्बना से बहुत आहत थे कि यह समाज जिसे अपना भाई कहता है, उसी के साथ ऐसा दुर्व्यवहार करता है कि मनुष्यता सिहर उठती है। उनके लिए यह चिंता का विषय था कि यह कैसा समाज है, जो मनुष्य को उसके गुणों–अवगुणों से नहीं, बल्कि उसकी जाति से देखता है। उन्हें इस बात को लेकर कोई भ्रम नहीं था कि यह पतनशील प्रवृति सिर्फ हिन्दू समाज के लिए नहीं बल्कि भारतीय समाज के लिए भी अत्यन्त घातक है। 26 दिसंबर, 1932 को उन्होंने अपने लेख 'हमारा कर्तव्य' में साफ–साफ लिखा कि ''हमारा कर्तव्य तभी पूरा होगा, जब हम देश के वर्तमान अछूतपन को जड़मूल से नष्ट कर देंगे।' इसी लेख में वे आगे लिखते हैं, ''क्या कोई भी वर्णाश्रम अपने हृदय पर हाथ रखकर कह सकता है कि वास्तव में यह छुआछूत उन्हें धर्म की दृष्टि से उचित प्रतीत होता है ? नहीं कोई भी यह नहीं कह सकता।''[1]

प्रेमचन्द जिन दिनों लगातार इस ज्वलंत विषय पर लिख रहे थे, उन्हीं दिनों गांधी जी ने भी कहा था, ''अस्पृश्यता या छुआछूत अगर हिन्दू धर्म में हो तो मुझे कहना पड़ेगा कि उसमें शैतानियत भरी हुई है, धर्म नहीं। पर मेरा दृढ़ विश्वास है कि हिन्दू धर्म में यह सब कुछ नहीं है। जब तक प्रत्येक हिन्दू अपने चमार, भंगी आदि भाइयों को भी अपने सगे भाई की तरह हिंदू न समझेंगे तब तक मैं उन्हें हिन्दू ही नहीं समझूंगा।''[2]

प्रेमचन्द एक सच्चे व सचेत द्रष्टा की भांति वह तत्कालीन समाज में दलितों की स्थिति को निरन्तर देख रहे थे और दुःखी और आक्रोशित हो रहे थे। शायद यही कारण है कि निरन्तर वह अपने लेखों में इस विषय पर लिख रहे थे और अपने साहित्य में भी प्रेमचन्द ने इस वर्ग को बहुत स्थान दिया है।

प्रेमचन्द के उपलब्ध कथा साहित्य में उनकी कहानी 'सद्गति' दलित पर ही केन्द्रित है। 'सद्गति' कहानी में दुखी नामक चमार को अपनी लड़की की सगाई का मुहूर्त निकलवाना है वह पण्डित घासीराम को अपने घर बुलाने की तैयारी करता है। जब उनके बैठने पर विचार होता है तो दुखी की पत्नी झुरिया कहती है कि ठकुराने से खटिया मंगा लेंगे। इस पर दुखी कहता है कि, 'तू तो कभी–कभी ऐसी बात करती है कि देह जल जाती है। ठकुराने वाले हमें खटिया देंगे। आग तक तो घर से निकलती नहीं, खटिया देंगे। कैथाने में जाकर एक लोटा पानी मांग लूं तो न मिले। भला खटिया देंगे। तू अपनी खटोली धोकर रख दे।'

झुरिया कहती है, 'वह हमारी खटोली पर बैठेंगे। देखते नहीं कितने नेम–धरम से रहते है।

दुखी, 'हां यह बात तो है। महुए के पत्ते तोड़कर एक पत्तल बना लूं तो ठीक हो जाए। पत्तल में बड़े–बड़े आदमी खाते हैं। वह पवित्तर है।'

जब झुरिया पंडित जी को सीधा अपने थाली में देने को कहती है तो दुखी कहता है, ''भला ऐसा गजब मत करना, नही तो सीधा भी जाए और थाली भी फूटे, बाबा थाली उठा कर पटक देंगे। झूरी गोंड की लड़की को लेकर साह की दुकान से सब चीज लाना। सीधा भरपूर हो। सेर भर आटा, आधा सेर चावल, पाव भर दाल, आधा पाव घी, नोन, हल्दी और पत्तल में एक किनारे चार आने पैसे भी रख देना। गोंड की लड़की न मिले तो भुर्जिन के हाथ–पैर जोड़कर ले आना। तू कुछ मत छूना, नहीं गजब हो जाएगा।''[3]

पति–पत्नी के इस वार्तालाप से तत्कालीन समाज में दलितों की स्थिति के विषय में पता चलता है और साथ ही यह भी कि वे अपनी इस स्थिति को सहजता से स्वीकार कर लेते थे। कहीं कोई असंतोष या गुस्सा नहीं।

कहानी यहीं खत्म नहीं होती है बल्कि इस कहानी में ब्राह्मणों का और भी घिनौना रुप सामने आता है। जब दुखी पंडित जी के घर पहुंचता है तो पंडित जी उससे झाड़ू लगाने, बैठक लीपने, भूसा ढोने और लकड़ी चीरने को कहते हैं परन्तु कुछ खाने को नहीं

देते। बिना कुछ खाए–पिए दिन भर काम करते–करते दुखी की मौत हो जाती है। गांव का गोंड चमारों को कानून का भय दिखाकर लाश उठाने से मना कर देता है। भला ब्राह्मण चमार की लाश कैसे उठाते; जिन्दा के साये से भी छूत का डर जिसको हो, वह उसकी लाश को छूना तो दूर, उसका वहाँ पड़े रहना भी बर्दाश्त नहीं कर सकता! पुलिस–थाने किसे जाना था ? पुलिस उस गरीब की मौत की तहकीकात करने कहाँ आती ? चमार की मनहूस लाश पंडित के द्वार पर कैसे पड़ी रहती ? रात निकलने पर, धुँधले में स्वयं पंडित ने रस्सी का फंदा पैरों में बांधकर लाश को गांव के बाहर घसीट दिया जहाँ उसकी लाश को गीदड़, गिद्ध, कुत्ते और कौए नोच रहे थे।

इस व्यवहार में कितनी अमानवीयता है कि घर के बाहर एक मृत व्यक्ति पड़ा है जो उन्हीं के कारण मरा है, लेकिन वह चमार है इसलिए इन्हें उससे कोई सहानुभूति नहीं है। इस कहानी में जो महत्वपूर्ण बात प्रेमचन्द ने दिखाई वो यह है कि इसमें उन्होंने ब्राह्मणों के ढकोसले और उनके शोशण के तरीकों पर सीधा प्रहार किया है। ब्राह्मण दलित से दान तो ले सकता है परन्तु उसे अछूत मानता है। उससे अपनी गाय को चारा डलवाएगा परन्तु उसके हाथ का छुआ स्वयं नहीं खाएगा। उससे अपना घर लीपवाएगा परन्तु उसके घर में घुसने से अपने घर को अपवित्र मानेगा। यह था ब्राह्मणों का दोहरा चरित्र जिस पर प्रेमचन्द ने प्रहार किया। इसीलिए ब्राह्मणों ने उनका बहिष्कार किया था।

दलितों की समस्या से संबंधित प्रेमचन्द की एक अन्य कहानी 'दुध का दाम' है जिसमें महेश बाबू नामक एक ठाकुर साहब हैं जिनको लगातार तीन पुत्रियों के बाद चौथे नम्बर पर एक पुत्र होता है तो उनके जच्चेखाने में काम करने वाली भंगिन भूंगी को नार काटने के लिए बुलाया जाता है। बाद में पता चलता है कि ठकुराइन को दूध ही नहीं उतर रहा, भूंगी को भी अभी हाल ही में बच्चा हुआ था। अतः ठाकुर साहब के बेटे को दूध पिलाने की जिम्मेदारी भूंगी पर ही आ जाती है। वह अपने बेटे को दूध न पिलाकर महेश बाबू के बेटे को दूध पिलाती है जिससे उसका बेटा बहुत कमज़ोर हो जाता है। एक दिन ठाकुर साहब के घर का परनाला साफ करते हुए भूंगी को एक सांप काट लेता है जिससे उसकी मौत हो जाती है। उसका बेटा अनाथ हो जाता है और ठाकुर साहब के टुकड़ों पर पलने लगता है। जिस मंगल के हिस्से का दूध पीकर ठाकुर महेश बाबू का बेटा बड़ा होता है उसी मंगल को घर भर के खाने बाद पेट भरने के लिए जूठन मिलता है। इतना ही नहीं उस अबोध को रहने के लिए मकान के सामने के नीम के पेड़ की छाँव मिलती है। महेश बाबू किसी अछूत को घर में कैसे रहने देते ? नीचता और पाखंड की हद देखिए कि अपने पुत्र की जान बचाने के लिए उनको एक दलित स्त्री के दूध में कोई छूत नजर नहीं आती लेकिन दलित की देह अछूत है।

मंगल भी अपनी स्थिति से परिचित है और सुरेश बाबू की उतरन, एक टाट, एक कटोरा और घर भर का जूठन, इन सब पर अपना गुजारा कर रहा है। एक बार महेश बाबू के बेटे सुरेश बाबू और मंगल में खेल–खेल में झगड़ा हो जाता है जिस पर महेश बाबू के बेटे ने घर जाकर मंगल की झूठी शिकायत कर दी। इस पर घर के लोग बहुत गुस्सा होते हैं और मंगल को बहुत गालियाँ देते हैं। महेष बाबू कहते हैं, ''और चाहे कुछ भी हो जाए, भंगी भंगी ही रहेंगे। इन्हें आदमी बनाना कठिन है।''[4] इस वक्तव्य से उच्च जातियों की मानसिकता का पता चलता है कि ये जातियां दलितों को जिसमें चमार, पासी, डोम, भंगी सभी आते हैं, को इंसान नहीं समझती हैं ये जातियां इन्हें सिर्फ और सिर्फ अछूत और नीच समझती हैं।

लोग कहते हैं कि दूध का दाम कोई नहीं चुका सकता लेकिन मंगल कहता है कि जब 'सुरेश को अम्मा ने पाला था' तो मुझे दूध का ये दाम मिल रहा है। मंगल के इस वाक्य में मंगल का कितना दर्द और बड़ी जातियों का दोगलापन छिपा है। अपनी आवष्यकता के लिए ये बड़ी जातियां दलितों का इस्तेमाल तो करती हैं परन्तु काम निकल जाने के बाद छूत–अछूत का ढकोसला शुरु कर देती हैं।

दूध का दाम प्रेमचन्द की यथार्थवादी सामाजिक कहानी है। इसमें ब्राह्मणवाद की लानत ऊँच–नीच, छुआ–छूत, धार्मिक षोशण, वर्ग–विशमता का बड़ा ही मार्मिक चित्रण हुआ है।

दलितों की समस्या से संबंधित प्रेमचन्द की एक और कहानी 'ठाकुर का कुआं' है। जिसमें प्रेमचन्द ने वर्ण–व्यवस्था पर करारा प्रहार किया है। इस कहानी में जोखू नामक दलित बीमार है और उसे प्यास लगी है। गांव में अछूतों के लिए जो कुआं था उसमें कोई जानवर गिर कर मर गया था इसलिए उसके पानी से बदबू आ रही थी। जोखू की पत्नी गंगी जोखू से कहती है कि वह ये पानी न पीए, वह उसके लिए ठाकुर के कुएं या साह के कुएं से साफ पानी लेकर आती है। इस पर जोखू कहता है ''हाथ–पांव तुड़वा आएगी और कुछ ना होगा। बैठ चुपके से। ब्राह्मण देवता आषीर्वाद देंगे, ठाकुर लाठी मारेंगे, साहू जी एक के पांच लेंगे। हम तो मर भी जाते हैं तो कोई दुआर पर झांकने नहीं आता, कंधा देना तो बड़ी बात है। ऐसे लोग कुएं से पानी भरने देंगे ?''[5] जोखू के इन षब्दों में हिन्दू समाज का कड़वा सत्य छिपा है। जोखू और गंगी दोनों ही इस बात को भली–भांति जानते हैं कि उच्च जातियां सिर्फ कहने के लिए ही ऊंची हैं जब कि इनमें ही सारी बुराइयां व्याप्त होती हैं। लेकिन गंगी फिर भी चोरी से पानी लाने का निष्चय करती है। वह ठाकुर के कुएं की जगत के पीछे अंधेरे में छिपकर सबके सोने का इंतजार करती है। जब वह मौका देखती है तो पानी लेने के लिए आगे बढ़ती है लेकिन गंगी पानी अभी ले ही नहीं पाती है कि तभी ठाकुर के घर का दरवाजा तेजी के साथ खुलता है। गंगी घड़ा कुए में ही छोड़कर तेजी से भाग जाती है। घर पहुंचकर वह देखती है कि जोखू वही गंदा बदबूदार पानी पी रहा है।

कितनी मार्मिक कहानी है। कैसी विडंबना है कि एक दलित स्त्री को पानी जैसी चीज की चोरी करनी पड़ती है और जिसमें वह डर की वजह से असफल भी हो जाती है और उसका पति वही गंदा पानी पीने के लिए मजबूर है। समाज की अमानवीयता दलितों के प्रति किस हद तक बढ़ गई थी प्रेमचन्द की कहानियों से पता चलता है।

'घासवाली' प्रेमचन्द की ऐसी कहानी है जिसमें एक चमारिन मुलिया उच्च वर्ण के लोगों से व उनकी दोगलेपन, नीचता व पाखंडता पर कैसे प्रहार कर अपने आत्मसम्मान की रक्षा करती है। इस कहानी में एक चमारिन घासवाली मुलिया है जो रोज घास छीलकर बाजार में बेचती है। उसका पति महाबीर है जो इक्का चलाता था। यही उस परिवार की जीविका थी। मुलिया बहुत सुन्दर थी गांव के बहुत से युवक उस पर जान छिड़कते थे जिनमें से एक चैनसिंह भी था। एक दिन वह मुलिया से बोला कि वह उससे इतना डरती क्यों है, वह तो सिर्फ उससे थोड़ी सी दया चाहता है। इस पर मुलिया कहती है, ''अगर मेरा आदमी तुम्हारी औरत से इसी तरह बातें करता, तो तुम्हें कैसा लगता ? तुम उसकी गर्दन काटने पर तैयार हो जाते कि नहीं ? बोलो! क्या समझते हो कि महाबीर चमार है तो उसकी देह में लहू नहीं है, उसे लज्जा नहीं है, अपनी मर्यादा का विचार नहीं है ? मेरा रंग–रूप तुम्हें भाता है, क्या घाट के किनारे मुझसे कहीं सुन्दर औरतें नहीं घूमा करतीं ? मैं उनके तलुवे की बराबरी भी नहीं कर सकती। तुम उनमें से किसी से क्यों नहीं दया मांगते, क्या उनके पास दया नहीं है ? मगर तुम वहां न जाओगे, क्योंकि वहां जाते तुम्हारी छाती दहलती है। मुझसे दया मांगते हो, इसलिए न कि मैं चमारिन हूं, नीच जाति हूं और नीच जाति की औरत जरा सी घुड़की–धमकी व जरा–सी लालच से तुम्हारी मुट्ठी

में आ जाएगी। कितना सस्ता सौदा है, ठाकुर हो न ऐसा सस्ता सौदा क्यों छोड़ने लगे ? उसके ऊंच–नीच न मानने और चरणों पर सिर रखने के लिए तैयार हो जाने पर दलित महिला का उत्तर है, इसलिए न कि जानते हो, मैं कुछ कर नहीं सकती। जाकर किसी खतरानी के चरणों पर सिर रखो तो मालूम हो कि चरणों पर सिर रखने का क्या फल मिलता है। फिर यह सिर तुम्हारी गर्दन पर न रहेगा।''[6] यहां मुलिया जानती है कि चैनसिंह उससे यह सब बातें इसलिए आराम से कह रहा है क्योंकि वह दलित है और उसका विरोध करने में सक्षम न हागी। यहां एक दलित स्त्री में आत्मसम्मान की भावना प्रेमचन्द ने दिखाई है और साथ ही साथ यह भी दिखाने का सफल प्रयास किया है कि किस प्रकार उच्च जाति के लोग एक चमारिन से संबंध तो स्थापित कर सकते हैं परन्तु अपने धर्म का झूठा दिखावा करने के लिए खानपान का परहेज करते हैं।

प्रेमचन्द की इन कहानियों के अतिरिक्त 'कफन' कहानी भी दलित जीवन पर ही आधारित है लेकिन यह एक ऐसी कहानी है। जिस पर दलित विरोधी होने का आरोप लगता है। प्रेमचन्द ने अपनी इन कहानियों में तत्कालीन समाज में जो हो रहा था वह दिखा रहे थे। उनकी सभी कहानियों में दलित अत्यंत गरीब हैं। जो दिन भर काम करते हैं और मुश्किल से एक जून खाने भर कुछ जुटा पाते हैं। इसी परिस्थिति का परिणाम कफन है। 'कफन' कहानी में माधव, घीसू का विचित्र जीवन है। ''घर में मिट्टी के दो–चार बर्तन के सिवा कोई संपत्ति नहीं। फटे चीथड़ों में अपनी नग्नता को ढाकें हुए जिए जाते थे।''[7] कर्ज से लदे हुए, गालियां खाते, मार खाते। दलितों की जिंदगी का वास्तविक चित्रण जिसे रात–दिन जी–तोड़ मेहनत करनी पड़ती है और प्राप्य कुछ भी नहीं।

इस कहानी में माधव की पत्नी बुधिया प्रसव पीड़ा से छटपटाती है और घीसू, माधव के पास उसके इलाज के लिए पैसे नहीं है। बुधिया दर्द से छटपटाती हुई मर जाती है। बुधिया के मरने पर घीसू–माधव भगवान से बुधिया को बैकुंठ भेजने की प्रार्थना करते हैं। घीसू कहता है, 'वह न बैकुंठ जाएगी तो क्या ये मोटे–मोटे लोग जाएंगे जो गरीबों को दोनों हाथों से लूटते हैं और अपने पापों को धोने के लिए गंगा में स्नान करते हैं और मंदिर में जल चढ़ाते हैं' ? कहानी में आगे घीसू कहता है, ''कैसा बुरा रिवाज है कि जीते जी तन ढकने को चीथड़ा भी नहीं मिले, उसे मरने पर नया कफन चाहिए।''[8] घीसू के ये कथन हिन्दू धर्म और उच्च जातियों के ढकोसलों पर गहरी चोट करते हैं।

'कफन' कहानी जिस पर दलित विरोधी होने का आरोप लगता है वो इसलिए कि इस कहानी में जो मुख्य दलित पात्र हैं माधव और घीसू दोनों ही निकम्मे और कामचोर हैं ऐसा प्रेमचन्द ने अपनी इस कहानी में दिखाया है जिसकी वजह से यह कहानी सवालों व बवालों के घेरों में घिर गई। पर असल में देखा जाए तो हर पहलू के दो रूप होते हैं जैसे इसका एक रूप तो दलित को निकम्मा और कामचोर दिखाना है तो वहीं दूसरा रूप हिन्दू समाज की खोखली सामाजिक व्यवस्था के सच को भी अभिव्यक्त करती है। जैसे रात–दिन मेहनत और प्राप्य कुछ भी नहीं। इस कहानी के मुख्य दलित पात्र माधव और घीसू यह सब देख रहे थे कि समाज में दलित जो भूमिहीन और गरीब हैं दिन–रात हाड़ तोड़ मेहनत के बाद भी मुश्किल से गुजारा कर पा रहा है। अतः उन्होंने काम न करने का फैसला किया। निकम्मापन और कामचोरी उनका चरित्र नहीं है। असल में यह उनका षोशण से बचने का तरीका है, हांलाकि यह तरीका हिन्दू समाज के सामाजिक व्यवस्था का प्रत्यक्ष रूप से संघर्श तो नहीं कर पाता लेकिन उनके भीतर एक विद्रोही चेतना है जो कामचोरी के रूप में, निकम्मेपन के रूप में प्रकट हाती है।

दलित समस्या से संबंधित साहित्य की रचना करने पर प्रेमचन्द के साहित्य तो सवालों के घेरों में घिरे ही, पर साथ ही उनके चरित्र पर भी सवाल उठने लगे। प्रेमचन्द जयन्ती की एक सभा में एक ब्राह्मण प्रतिष्ठित साहित्यकार डॉ. नगेंद्र ने कहा था कि प्रेमचन्द के हृदय में ब्राह्मणों के प्रति पूर्वग्रह था– यही कारण है कि उन्होंने स्थान–स्थान पर ब्राह्मणों की खिल्ली उड़ाई है। उनकी भरसक निन्दा– आलोचना की है। लेकिन प्रेमचन्द पर यह आक्षेप सर्वथा मिथ्या है अगर उन्हें ब्राह्मण जाति के प्रति पूर्वग्रह होता तो ये सैकड़ों ब्राह्मण पात्र जो उनकी कहानियों और उपन्यासों में सदाचारी व अच्छे मनुष्य है उनकी लेखनी से सच्चरित कैसे चित्रित होते ?

अतः प्रेमचन्द का छुआ–छूत, ऊंच–नीच, जात–पाँत के भेद–भाव का प्रस्तुत कहानी जैसा चित्रण किसी प्रकार की अतिरंजना नहीं है, सर्वथा–यथार्थ है, वास्तविक और स्वाभाविक है। प्रेमचन्द ने स्वयं ग्राम समाज में ब्राह्मणवाद के ये अतिचार और अत्याचार देखे थे। साठ–सत्तर वर्श बीत जाने पर भी छुआ–छूत, ऊंच–नीच, जात–पाँत के भेद–भाव को मिटाने के सैकड़ों आंदोलनों और प्रयत्नों के बावजूद आज भी हमारे गांवों में इस किस्म का छुआ–छूत, भेद–भाव दिखाई देता है। इसी कारण प्रेमचन्द की प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है।

आज प्रेमचन्द की इस धारणा पर विचार करते हुए प्रतीत होता है कि प्रेमचन्द बड़े भविश्य–द्रश्टा थे। आज का समाज प्रेमचन्द की वह राय जाने–अनजाने काफी हद तक मानने को बाध्य है और यह बाध्यता बहुत सुखद है।

संदर्भ

1. प्रेमचन्द, लेख–हमारा कर्त्तव्य, 26 दिसम्बर, 1932, उद्धृत, शाही सदानन्द (संपा), दलित साहित्य की अवधारणा और प्रेमचन्द, पृ. –114, गोरखपूर, 2000।
2. षाही सदानन्द (संपा), दलित साहित्य की अवधारणा और प्रेमचन्द, पृ.–115, गोरखपूर, 2000।
3. प्रेमचन्द, मानसरोवर, खण्ड–4, पृ.–9, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, 1987।
4. प्रेमचन्द, मानसरोवर, खण्ड–2, पृ.–128, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, 1987।
5. प्रेमचन्द, मानसरोवर, खण्ड–1, पृ.–84, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, 1987।
6. प्रेमचन्द, मानसरोवर, खण्ड–1, पृ.–192, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, 1987।
7. प्रेमचन्द, कफन, साहित्यागर प्रकाशन, जयपुर, 1987।
8. प्रेमचन्द, कफन, साहित्यागर प्रकाशन, जयपुर, 1987।